(समयसार) १०९ कलश।

सन्न्यस्तव्य-मिदं समस्त-मपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना,
सन्न्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा।
सम्यक्त्वादि-निजस्वभाव-भवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्,
नैष्कर्म्य-प्रतिबद्ध-मुद्धत-रसं ज्ञानं स्वयं धावति।।१०९।।

क्या कहते हैं? देखो '**मोक्षार्थिना इदं समस्तम् अपि तत् कर्म एव संन्यस्तव्यम्**' **मोक्षार्थी को..** राजमलजी की टीका में ऐसा कहा है कि मोक्षार्थी (अर्थात्) जिसे मोक्ष की अभिलाषा है, जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुआ हो। अतीन्द्रिय आनन्द के अभिलाषी को कलश-टीका में मोक्षार्थी कहते हैं। राजमलजी की टीका है न? १०९ कलश, मोक्षार्थी - **सकलकर्मक्षय मोक्ष-अतीन्द्रिय पद, उसमें जो अनन्त सुख, उसे उपादेय अनुभव करता है...** अतीन्द्रिय आनन्द मोक्ष में है, वह अतीन्द्रिय आनन्द जो अनुभव करता है, वह जीव। आहाहा! मोक्ष का अभिलाषी - मोक्षार्थी का अर्थ यह है। आत्मा का जो अनन्त आनन्द है, सहज स्वरूप, उसका अनुभव होकर उपादेयरूप से मानता है... आहाहा! वह जीव मोक्षार्थी की व्याख्या बड़ी लम्बी है।

(यहाँ कहते हैं) **मोक्षार्थी को यह समस्त ही कर्ममात्र त्याग करने योग्य है।** पुण्य और पाप के भाव सब त्यागने योग्य हैं। आहाहा! चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, काम, क्रोध हो या चाहे तो दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, वह सब भाव, बन्ध के कारण हैं। आहाहा! **मोक्षार्थी को..** अनन्त आनन्द, सुख को उपादेयरूप से अनुभव करता है, ऐसे मोक्षार्थी को **समस्त ही कर्म..** कर्म शब्द से शुभाशुभभाव। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, यह सब **त्याग करने योग्य है।** वह धर्म नहीं है। आहाहा! '**संन्यस्ते**

सति तत्र पुण्यस्य पापस्य वा किल का कथा' जहाँ समस्त कर्मों का त्याग किया जाता है.. आहाहा! जहाँ समस्त पुण्य और पाप के भाव का त्याग किया जाता है, **फिर वहाँ पुण्य या पाप की क्या बात है?** कि पुण्य ठीक है और पाप अठीक है।

रात्रि में तुम्हारा समानजाति का प्रश्न हुआ था न, वह मैं समझा नहीं था। समानजाति तो यहाँ लेना है। द्रव्य और गुण समानजाति में लेना है। यहाँ द्रव्यपर्याय लेना है न! द्रव्यपर्याय लेना है न! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसे अनुभव में उपादेयरूप से जानता है, ऐसे मोक्षार्थी को पुण्य और पाप दोनों भाव कर्मरूप हैं, इसलिए त्यागनेयोग्य हैं। उसमें फिर यह पुण्य ठीक और पाप अठीक, ऐसी बात कहाँ है? दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा! व्रत और तप, दया और दान, पूजा और भक्ति, हिंसा और झूठ, चोरी और विषय-वासना, सब कर्म विकार है, वह त्यागनेयोग्य है। आहाहा!

फिर वहाँ पुण्य या पाप की क्या बात है? कि पुण्य शुभभाव व्रत, तपादि ठीक हैं, ऐसी बात कहाँ आयी? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **(कर्ममात्र त्याज्य है, तब फिर पुण्य अच्छा है और पाप बुरा है-ऐसी बात को अवकाश ही कहाँ है?)** आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! शुद्धचैतन्य परमानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा का जिसे शुद्ध परिणमन करना है और पूर्ण परिणमन का अभिलाषी है, उसे तो पुण्य-पाप में पुण्य ठीक और पाप अठीक - ऐसा कुछ है ही नहीं। दोनों छोड़ने योग्य हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य तो सिद्ध में छूटता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, पहले से ही दृष्टि में से छोड़ना। फिर जब शुद्ध उपयोग पूर्ण होगा, तब वह अस्थिरता में से छूट जाएगा, परन्तु दृष्टि में से तो पहले छोड़ना। श्रद्धा में से तो पहले ही छोड़ना। पश्चात् जब शुद्धोपयोग पूर्ण होगा, तब वह शुभपरिणाम उत्पन्न नहीं होगा, परन्तु यहाँ तो पहले से श्रद्धा में पुण्य और पाप दोनों त्यागनेयोग्य है और त्रिकाली आनन्दस्वरूप ही उपादेय है, ऐसा पहले से श्रद्धा में लेना। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! सूक्ष्म बात है, बापू!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, इस वीतरागभाव में मोक्षमार्ग बताते हैं। राग

में मोक्षमार्ग नहीं (कहते)। आहाहा! वीतराग है, सर्वज्ञ परमात्मा है। वे वीतराग कैसे हुए? कि वीतरागभाव से वीतरागभाव हुआ। राग की क्रिया से वीतरागभाव नहीं होता है। आहाहा! शुभ या अशुभ दोनों भाव कर्मबन्ध के कारण हैं। इसलिए दोनों भाव त्याज्य हैं। दो में से किसी भाव से वीतरागता होगी, ऐसा है नहीं। आहाहा!

(ऐसी बात को अवकाश ही कहाँ है? कर्म सामान्य में दोनों आ गये हैं।) **'सम्यक्त्वादि-निजस्वभावभवनात् मोक्षस्य हेतुः भवन्'** तब अब शुभ और अशुभ का त्याग है तो मोक्ष का कारण क्या? जब शुभ-अशुभभाव, मोक्ष का कारण नहीं और त्याज्य है तो अब मोक्ष का कारण क्या है? **समस्त कर्म का त्याग होने पर, सम्यक्त्वादि अपने स्वभावरूप होने से-परिणमन करने से मोक्ष का कारणभूत होता हुआ,...** अपना पूर्णानन्द प्रभु, उसका सम्यग्दर्शन-शुद्धस्वभाव, पूर्ण शुद्धस्वभाव के अवलम्बन से निश्चय सम्यग्दर्शन शुद्ध परिणमन है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव दोनों अशुद्ध परिणमन होने से मोक्ष के कारण को त्याग दिया है। उसमें मोक्ष का कारण नहीं है। चाहे लाख व्रत, तप करे, भक्ति-पूजा करे करोड़ों बार, परन्तु वह तो शुभराग है, उसमें कोई मोक्ष का कारण है नहीं। मोक्ष का कारण तो शुद्धचैतन्य प्रभु का सम्यग्दर्शन में शुद्ध परिणमन (हो), शुद्धपरिणमन (हो, वह मोक्ष का कारण है)। शुभ-अशुभभाव है, वह अशुद्धपरिणमन है। पुण्य और पाप के दोनों भाव अशुद्धभाव हैं। वह आत्मा के स्वभाव के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन (हुआ, वह मोक्ष का कारण है)। कहा है, देखो!

सम्यक्त्वादि.. (अर्थात्) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र **अपने स्वभावरूप होने से..** वह तो अपनी पर्याय में अपना स्वभाव है। त्रिकली नहीं, त्रिकाली स्वभाव तो ध्रुव है। वह तो पर्याय में अपना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह स्वभाव है। विभावरहित स्वभाव है। आहाहा!

सम्यक्त्वादि अपने स्वभावरूप होने से.. अर्थात्... **परिणमन करने से..** वह त्रिकाली स्वभाव नहीं। त्रिकाली शुद्ध भगवान आत्मा, **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, यह ११वीं गाथा (में कहा है)। त्रिकाल भूतार्थ भगवान पूर्ण आनन्द, ध्रुव चैतन्य के अवलम्बन से, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। वह सम्यग्दर्शन शुद्धपरिणमन है। निश्चय सम्यग्दर्शन, वह शुद्ध परिणमन है। व्यवहार समकित (कहा,

वह तो) राग को आरोप करके कहा है, वह कोई (समकित) है नहीं। व्यवहार-ब्यवहार समकित है ही नहीं। आहाहा! यह तो निश्चय समकित है, वहाँ राग को व्यवहार समकित का आरोप देकर समझाया है परन्तु वह समकित है ही नहीं। निश्चय सम्यक्त्व, वही सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप, पूर्ण अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दादि गुण का सागर है। आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का गोदाम है। गोदाम समझ में आता है? बड़ा मकान हो, उसमें गोदाम हो, (उसमें) बड़ी चीज़ रह सके, ऐसा गोदाम। गोदाम कहते हैं न? हमारे यहाँ पालेज में तेरह गोदाम हैं। पालेज, हमारी वहाँ दुकान थी न! पालेज! भरुच और बड़ोदरा के बीच में पालेज है, गुजरात में है, वहाँ हमारी दुकान थी न! मैंने तो (संवत्) १९६८ से छोड़ दी थी, परन्तु (अभी) दुकान चलती है। बड़ी दुकान है। तेरह तो गोदाम हैं। पचास-पचास, साठ-साठ हजार के तेरह गोदाम! बड़ी दुकान है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की वर्ष की आमदनी है। पालेज, भरुच और बड़ोदरा के बीच में है। तेरह गोदाम हैं। अन्दर माल पड़ा होता है। चावल की बोरियों की थप्पी पड़ी होती है। इसी प्रकार यह भगवान गुणी! यह चावल की बोरी का बड़ा गोदाम होता है। यह गुणी आत्मा गुण का गोदाम है। आहाहा! भगवान आत्मा! आहाहा!

सम्यक्त्वादि.. आदि अर्थात् तीनों। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र। इन **अपने स्वभावरूप होने से..** पर्याय, हों! त्रिकाली नहीं। पर्याय जो है, वह सम्यग्दर्शन -ज्ञान तो अपने स्वभावरूप शुद्ध परिणमन है। आहाहा! उस स्वभावरूप होने से अर्थात् लाईन (लम्बा डेश अर्थात्) अर्थात्। **परिणमन करने से..** त्रिकाली भगवान आत्मा में जो अनन्त गुण भरे हैं, श्रद्धागुण है, चारित्रगुण है, आनन्दगुण त्रिकाल है। उसके आश्रय से पर्याय में शुद्धस्वभाव का परिणमन होना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह मोक्ष का कारण है, ऐसी बात है। सम्प्रदाय में लोगों ने तो बाहर से कुछ मनवा लिया है। यह अपवास करो, यह वर्षी तप करो और क्या कहलाता है? भगवान की भक्ति करो, पूजा करो। यह भाव होता है, परन्तु वह भाव, बन्ध कारण है; मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : हेय मानेगा तो कोई करेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करे नहीं, यही सत्य है। करनेयोग्य है नहीं, परन्तु होंगे। करनेयोग्य नहीं। सम्यग्दृष्टि को राग आता है परन्तु करनेयोग्य है, ऐसा नहीं मानता। इस प्रकार वह हितकर है, ऐसा नहीं मानता और वह अपना स्वभाव है, ऐसा नहीं मानता और वह मोक्ष का कारण है, ऐसा नहीं मानता। आहाहा! कठिन बात, भाई! दुनिया कुछ (अलग) मार्ग में चढ़ गयी है। प्रभु का मार्ग अन्दर कहीं रह गया है। आहाहा!

परिणमन करने से मोक्ष का कारणभूत होता हुआ,.. देखो! आहाहा! सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र, वह अपना शुद्ध परिणमन है। दया, दान, व्रत, भक्ति तो अशुद्ध परिणमन है। यह शुद्ध परिणमन है। पर्याय है परन्तु शुद्ध है। त्रिकाली के आश्रय से उत्पन्न हुई पर्याय है, वह शुद्ध है। वह शुद्ध पर्याय ही मोक्ष का कारण है। आहाहा! क्योंकि मोक्ष भी पर्याय है, मोक्ष भी पर्याय है और उसका कारण मोक्ष का मार्ग भी पर्याय है और संसार भी पर्याय है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष की पर्याय, वह संसार है। संसार अपनी पर्याय में है। संसार बाहर में नहीं रहता। आहाहा! इसी प्रकार मोक्षमार्ग अपनी पर्याय में है, बाहर में नहीं है। मोक्ष भी अपनी शुद्ध पूर्ण पर्याय है, बाहर में मोक्ष नहीं है। आहाहा! अपना शुद्ध परिणमन होना, (वह मोक्षमार्ग है)।

'नैष्कर्म्य-प्रतिबद्धम् उद्धतरसं' आहाहा! **निष्कर्म अवस्था के साथ..** यह पुण्य और पाप के भाव तो कर्म अवस्था है। यह (सम्यक्त्व आदि) निष्कर्म अवस्था है। आहाहा! निष्कर्म अवस्था, हों! वस्तु तो त्रिकाल है परन्तु त्रिकाल के अवलम्बन से निष्कर्म अवस्था प्रगट होती है। पर्याय! अवस्था कहो, पर्याय कहो, अल्पदशा कहो, वर्तमान शुद्ध परिणमन कहो। आहाहा!

निष्कर्म अवस्था के साथ.. यह पुण्य-पाप के परिणाम तो कर्म हैं। इनसे रहित निष्कर्म अवस्था आत्मा में होती है। स्वभाव के अवलम्बन से पुण्य और पाप की कर्म - अवस्था से भिन्न निष्कर्म अवस्था होती है। आहाहा! उस अवस्था के साथ **जिसका उद्धत (उत्कट) रस प्रतिबद्ध..** है। वह शुद्ध परिणमन में लीन है। धर्मात्मा अपने मोक्ष के मार्ग में शुद्ध परिणमन में वह लीन है, वही मोक्षमार्ग है। आहाहा! **(उत्कट) रस प्रतिबद्ध..** है। निर्मलानन्द नाथ पर्याय, पर्याय, हों! शुद्ध निर्मल पवित्र पर्याय उत्कट रसवाली है। अतीन्द्रिय आनन्द के रसवाली है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में, सम्यग्दर्शन जब होता है, तब अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। राग, दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति है, वह दुःख का स्वाद है। आहाहा! वह आस्रव है, राग है, दुःख का स्वाद है और आत्मस्वभाव में जब दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ तो अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का वेदन हुआ तो उस स्वाद के वेदन में उत्कट रस प्रतिबद्ध है। आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय अतीन्द्रिय आनन्द के रस में प्रतिबद्ध है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म! लोगों को क्रियाकाण्ड में घुसा दिया और धर्म मनवाकर सम्प्रदाय चलाया। वीतरागमार्ग भिन्न है, प्रभु! आहाहा! ओहोहो! क्या कहते हैं?

निष्कर्म अवस्था के साथ जिसका उद्धत (उत्कट) रस.. अतीन्द्रिय आनन्द का रस जिसमें प्रतिबद्ध है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का जिसमें वेदन है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष के कारणरूप पर्याय है। आहाहा! वस्तु तो भाई! आचार्यों ने बहुत संक्षिप्त में (समाहित कर दी)। दिगम्बर भावलिंगी सन्त हैं। प्रचुर स्वसंवेदन जिन्हें वर्तमान में है, उन्हें मुनि कहते हैं। समकिती को भी आत्मिक अतीन्द्रिय आनन्द का अंश आता है, तब सम्यग्दर्शन होता है, तो मुनि तो प्रचुर स्वसंवेदन में हैं। अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन होता है, तब सच्चे मुनि होते हैं। यह क्रियाकाण्ड, व्रत और तप और क्रिया, यह सब तो बन्ध का कारण है। इनमें मुनिपना नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : निष्कर्म अवस्था के साथ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निष्कर्म अवस्था है। राग कर्म है, उससे रहित मोक्ष की निष्कर्म अवस्था है।

मुमुक्षु : निष्कर्म अवस्था के साथ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, स्वयं निष्कर्म अवस्था ही है। जो मोक्ष का मार्ग है, वह निष्कर्म अवस्था है। साथ-बाथ की बात नहीं। मोक्ष का मार्ग है, वह निष्कर्म अवस्था है। साथ में राग होता है, वह तो कर्म अवस्था है, वह बन्ध का कारण है, इसलिए त्याग किया। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

निष्कर्म दशा! पुण्य के परिणाम हैं, वह कर्म दशा है। उससे भगवान मोक्ष के मार्ग की दशा निष्कर्म दशा है। उसमें कर्म अवस्था है ही नहीं। आहाहा! उसमें तो आत्मा अनन्त

गुण का पिण्ड प्रभु, उसका शुद्धपरिणमन हो, वह निष्कर्म अवस्था है। आहाहा! आचार्य स्पष्टीकरण करते हैं।

अमृतचन्द्राचार्यदेव का कलश है। उनकी टीका है, गाथा कुन्दकुन्दाचार्यदेव की है, गाथा! यह कलश है और टीका है, वह अमृतचन्द्राचार्यदेव की है। उन्होंने बनायी है। एक हजार वर्ष पहले यहाँ सम्प्रदाय में थे, दिगम्बर सम्प्रदाय में! कुन्दकुन्दाचार्यदेव दो हजार वर्ष पहले थे। उनकी टीका अमृतचन्द्राचार्यदेव ने बनायी। मूल रहस्य! फिर एक टीका जयसेनाचार्यदेव की है। संस्कृत में दो टीकायें हैं। आहाहा! **ऐसा ज्ञान,..** अर्थात् आत्मा का स्वभाव। **अपने आप दौड़ा चला आता है।** आहाहा! क्या कहते हैं? पुण्य और पाप के भाव का निषेध करके, जो अपना शुद्धस्वरूप का आश्रय करके निष्कर्म अवस्था जो प्रगट होती है, कहते हैं कि वह तो दौड़ती चली आती है। निर्मल परिणति, परिणति, परिणति... परिणति... एकदम... एकदम... दौड़ती आती है। आहाहा! उसमें एक में दौड़ता कहा है न! प्रवचनसार में! पर्याय दौड़ती—आयत समुदाय है। दोपहर को आया था न? विस्तार समुदाय (अर्थात्) गुण। आयत समुदाय, वह पर्याय है। दौड़ती पर्याय, ऐसा पाठ है। दौड़ती अर्थात् एकदम एक के बाद एक होती हुई। इस प्रकार आनन्द की दशा दौड़ती हुई एक के बाद एक आनन्द की दशा अन्दर चलती है। आहाहा! उसे यहाँ प्रभु मोक्षमार्ग कहते हैं। आहाहा! अब ऐसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान का तो भान नहीं और बाहर व्रत और तप, भक्ति, पूजा करके कायक्लेश करके मर जाए (तो भी हित नहीं होता)। ऐसी बात है, प्रभु!

आहाहा! **अपने आप दौड़ा चला आता है।** क्या कहते हैं? कि जिसे राग की मन्दता की भी अपेक्षा नहीं, वह निर्मल अवस्था अपने आप दौड़ती आती है, ऐसे निर्मल होकर आती है। आहाहा! शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान शुद्ध हुआ, वह दौड़ती पर्याय उत्पन्न होती है। उसे किसी की अपेक्षा नहीं है। **'स्वयं धावति' 'स्वयं धावति'** स्वयं से, अपने पुरुषार्थ से ये तीनों वीतरागदशा (प्रगट होती है)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीनों वीतरागदशा है। आहाहा! क्योंकि प्रभु स्वयं जिनस्वरूप है। आत्मा 'घट-घट अन्तर जिन बसे और घट-घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सों मतवाला समझे न।' 'घट-घट अन्तर जिन बसे' प्रभु! अन्दर वीतराग

मूर्ति आत्मा है। उसकी शक्ति-स्वभाव त्रिकाली वीतरागस्वरूप है। जिनस्वरूपी आत्मा है। आहाहा! स्वभाव! उस जिनस्वरूप में से... आहाहा! आश्रय लेकर जो पर्याय हुई, वह स्वयं अपने से (हुई है)। कोई संहनन या मनुष्य या देव-गुरु की कृपा से या मदद से वह शुद्ध परिणति होती है, ऐसा नहीं है। स्वयं अपने आप दौड़ती आती है। आहाहा! जैसे आयत दौड़ती आती है, कहा है; वैसे यहाँ स्वयं दौड़ती आती है, (ऐसा कहा है)। दौड़ती कहते हैं न हिन्दी (में)? आहाहा! एक के बाद एक निर्मल पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! क्योंकि पर्याय तो एक समय की अवस्था है। ध्रुव त्रिकाल है। एक समय की अवस्था के पीछे दूसरी, तीसरी... ऐसे एक के बाद एक दौड़ती निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है। उस परिणति को मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। ऐसा है, भगवान! आहाहा!

गाथा ७२ में भगवानरूप से तो बुलाते हैं। समयसार की ७२ गाथा है। आचार्य महाराज स्वयं 'भगवान आत्मा' (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! ७२ वीं गाथा है। भगवान आत्मा!—ऐसा कहकर बुलाते हैं। आहाहा! हे जीव कर्मसहित,—ऐसा कहकर नहीं बुलाते। आहाहा! भगवान आत्मा, वह तो राग-पुण्य की क्रिया से भिन्न ऐसा भगवान आत्मा है। आहाहा! उस भगवान आत्मा के अवलम्बन से जो निष्कर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतराग अवस्था है, वह दौड़ती प्रगट होती है। एक के बाद एक, एक के बाद एक... वीतरागी पर्याय ही उत्पन्न होती है। मोक्षमार्ग का आश्रय लेनेवाली, मोक्षमार्ग की पर्याय का आश्रय द्रव्य; द्रव्य का आश्रय लेनेवाली वह पर्याय एक के बाद एक दौड़ती उत्पन्न होती है। आहाहा! यह बात सुनते हुए ही कठिन लगती है।

अभी तो व्रत करो और तप करो और अपवास करो, साधु हो जाओ, वस्त्र छोड़कर नग्न (हो जाओ)। अब नग्न अनन्त बार हुआ है। पंच महाव्रत के परिणाम (अनन्त बार किये हैं)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' यह छहढाला में आता है। 'पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ये पंच महाव्रत के परिणाम दुःख हैं, आस्रव हैं। आहाहा! परन्तु आत्मज्ञान, आनन्द का अनुभव, उसके बिना संसार में भटका। पंच महाव्रत पालन किये, दिगम्बर मुनि द्रव्यलिंगी (हुआ)। द्रव्यलिंगी मुनिपना नग्न (दशा) वस्त्र का एक टुकड़ा न रखे, उसमें क्या हुआ? अन्तर में दृष्टि का अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन (नहीं), आनन्द का स्वाद आया नहीं तो उस क्रियाकाण्ड में तो परिभ्रमण का कारण है। आहाहा!

ऐसा ज्ञान, अपने आप दौड़ा.. अर्थात् पर्याय। ज्ञान अर्थात् यहाँ आत्मा के ज्ञान की पर्याय, समकित की पर्याय, चारित्र की पर्याय, सबको ज्ञान कहते हैं। वह **ज्ञान, अपने आप दौड़ा चला आता है।** आहाहा! अपने आप! स्वयं और अपने आप। शुद्ध चैतन्य भगवान का अवलम्बन लेने से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए, वह स्वयं अपने से और दौड़ते चले आते हैं। एक के बाद एक, एक के बाद एक शुद्धपरिणति उसे प्रगट होती है और शुद्धपरिणति पूर्ण हो जाए, वह मोक्ष है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ : कर्म को दूर करके,.. (अर्थात्) शुभाशुभभाव को दूर करके। **अपने सम्यक्त्वादिस्वभावरूप परिणमन करने से..** अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञानस्वभावरूप परिणमन करने से (अर्थात् कि) पर्याय में परिणमन करने से, अवस्था प्रगट करने से। **मोक्ष का कारणरूप होनेवाला ज्ञान अपने आप प्रगट होता है,..** यह ज्ञान का समकित, ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान का चारित्र अपने आप प्रगट होता है। **तब फिर उसे कौन रोक सकता है?** आहाहा! विकार भी स्वयं से होता है, वह कहीं कर्म से नहीं होता। 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' स्तुति में आता है। सब ऐसा कहते हैं कि राग, कर्म से होता है, कर्म से होता है। अरे! कर्म तो जड़ हैं, धूल है और राग-विकार तो अरूपी तेरी दशा में है। उसे तो निकाल डालने के लिए पुद्गल का कहा है। है तो तेरी पर्याय का विकार। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि मोक्ष के कारणरूप होता अपना आत्मा, उसकी पर्याय, अपने आप प्रगट होती है। उसे व्यवहार की भी अपेक्षा नहीं कि मन्दराग का व्यवहार किया तो वह शुद्ध समकित दर्शन (हुआ), (ऐसी) उसकी कोई अपेक्षा नहीं है। आहाहा! इसके लिए स्वयं कहते हैं और दौड़ा (आता है, ऐसा कहा)। अन्दर से एक के बाद एक निर्मल पर्याय चली आती है। द्रव्य का अवलम्बन लिया तो अन्दर शुद्धपरिणति एक के बाद एक दौड़ती आती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। सम्प्रदाय में तो कठिन पड़े। धमाल... धमाल! ऐ... बड़े मन्दिर बनाओ और प्रतिष्ठा करो तथा उसमें इन्द्र बने और उसमें लाख-लाख रुपये के इन्द्रों को (ऐसा लगे कि) मानों धर्म हो गया! धूल में भी धर्म नहीं।

मुमुक्षु : धर्म का कारण तो होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध का कारण है। क्या कहा?

मुमुक्षु : धर्म का कारण होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! धर्म (क्या), पुण्य का कारण है। निश्चय से तो 'पाप को पाप सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' योगीन्द्रदेव के दोहे में आता है। 'पाप को पाप सब कहे परन्तु अनुभवीजन...' समकिती 'पुण्य को पाप कहे।' पाप (अर्थात्) अपने स्वरूप से च्युत हो जाता है। आहाहा! ऐसी बात सुनने को मिलना मुश्किल है। जहाँ हो वहाँ यह व्रत करो, तप करो, अपवास करो। क्रियाकाण्ड में धर्म मान लिया। आहाहा!

कलश–११०

अब आशंका उत्पन्न होती है कि–जब तक अविरत सम्यक्दृष्टि इत्यादि के कर्म का उदय रहता है तब तक ज्ञान मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है? और कर्म तथा ज्ञान दोनों (–कर्म के निमित्त से होनेवाली शुभाशुभ परिणति तथा ज्ञानपरिणति) एक ही साथ कैसे रह सकते हैं? इसके समाधानार्थ काव्य कहते हैं:–

(शार्दूलविक्रीडित)

यावत्पाक–मुपैति कर्म–विरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा,
कर्मज्ञान–समुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः।
किन्त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बन्धाय तन्,
मोक्षाय स्थित–मेक–मेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः।।११०।।

श्लोकार्थ : [यावत्] जब तक [ज्ञानस्य कर्मविरतिः] ज्ञान की कर्मविरति [सा सम्यक् पाकम् न उपैति] भलीभाँति परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होती, [तावत्] तब तक [कर्मज्ञानसमुच्चयः अपि विहितः न काचित् क्षतिः] कर्म और ज्ञान का एकत्रितपना शास्त्र में कहा है; उसके एकत्रित रहने में कोई भी क्षति या विरोध नहीं है। [किन्तु] किन्तु [अत्र अपि] यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि आत्मा में [अवशतः यत् कर्म समुल्लसति] अवशपने जो कर्म प्रगट होता है, [तत् बन्धाय] वह तो बन्ध का कारण है, और [एकम्

एव परमं ज्ञानं स्थितम्] जो एक परम ज्ञान है, वह एक ही [मोक्षाय] मोक्ष का कारण है- [स्वत: विमुक्तं] जो कि स्वत: विमुक्त है (अर्थात् तीनों काल परद्रव्य-भावों से भिन्न है।)

भावार्थ : जब तक यथाख्यातचारित्र नहीं होता, तब तक सम्यक्दृष्टि के दो धाराएँ रहती हैं-शुभाशुभ कर्मधारा और ज्ञानधारा। उन दोनों के एक साथ रहने में कोई भी विरोध नहीं है। (जैसे मिथ्याज्ञान और सम्यक्ज्ञान के परस्पर विरोध है, वैसे कर्मसामान्य और ज्ञान के विरोध नहीं है।) ऐसी स्थिति में कर्म अपना कार्य करता है, और ज्ञान अपना कार्य करता है। जितने अंश में शुभाशुभ कर्मधारा है, उतने अंश में कर्मबन्ध होता है और जितने अंश में ज्ञानधारा है, उतने अंश में कर्म का नाश होता जाता है। विषय -कषाय के विकल्प या व्रत, नियम के विकल्प अथवा शुद्ध स्वरूप का विचार तक भी -कर्मबन्ध का कारण है, शुद्धपरिणतिरूप ज्ञानधारा ही मोक्ष का कारण है।।११०।।

श्लोक - ११० पर प्रवचन

११० कलश। इसमें अभी बाकी है न? **अब आशंका उत्पन्न होती है कि-जब तक अविरत सम्यक्दृष्टि इत्यादि के कर्म का उदय रहता है..** क्या कहते हैं? कि सम्यग्दृष्टि को राग तो आता है। **तब तक ज्ञान मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है?** तब तक ज्ञान मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है? क्या (कहा)? कि सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव हुआ, आत्मा के आनन्द का स्वाद आया, उसे भी राग तो आता है। वीतराग होवे तो राग नहीं होता। निचले दर्जे में राग तो आता है। भक्ति का, विनय का, वाँचन का, श्रवण का ऐसा राग तो आता है, तो कहते हैं इत्यादि **कर्म का उदय रहता है, तब तक ज्ञान मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है? और कर्म तथा ज्ञान दोनों (-कर्म के निमित्त से होनेवाली शुभाशुभ परिणति तथा ज्ञानपरिणति) एक ही साथ कैसे रह सकते हैं?** (ऐसा) शिष्य का प्रश्न है। कि एक तो अपने शुद्धस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और निर्विकारी परिणति तथा साथ में राग, ये दोनों एक साथ किस प्रकार रह सकते हैं?

शिष्य का प्रश्न यह है कि जब तक आत्मा पूर्ण वीतराग न हो, तब तक आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (की) निर्मल परिणति भी है और साथ में राग भी है। यदि राग

न हो तो वीतराग हो जाए, तो एक साथ ये दोनों किस प्रकार रह सकते हैं ? ऐसा पूछता है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को भी जब तक वीतरागता नहीं है, तब तक भक्ति का, विनय का शुभराग तो आता है परन्तु है बन्ध का कारण। तो कहते हैं कि एक समय में शुद्ध परिणमन और दूसरा अशुद्ध राग, ऐसा कैसे होता है ? अविरत सम्यग्दृष्टि चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) कहीं वीतराग नहीं है। अपने स्वभाव की दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (हुए), इतनी तो वीतरागता है परन्तु अभी पूर्ण वीतरागता नहीं तो राग भी आता है। वह राग बन्ध का कारण और शुद्धपरिणमन अबन्ध का कारण, दोनों एक साथ किस प्रकार रह सकते हैं ? ऐसा प्रश्न है। समझ में आया ? आहाहा!

(शुभाशुभ परिणति तथा ज्ञानपरिणति) एक ही साथ कैसे रह सकते हैं? आहाहा! ऐसी शिष्य की आशंका है, हों! है न ? शंका दूसरी चीज़ है। शंका (अर्थात्) तुम कहते हो, वह झूठ है, यह शंका है और तुम कहते हो वह ठीक है परन्तु मैं समझ नहीं सकता, उसे आशंका कहते हैं। शंका तो, तुम कहते हो, वह झूठ है, यह शंका है परन्तु आशंका (अर्थात्) तुम कहते हो, वह बराबर है, परन्तु मुझे समझ में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया ? आशंका कही न ? **आशंका उत्पन्न होती है..** ऐसा कहा था। यह क्या ? प्रभु!

आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, वह वीतरागी परिणति हुई, वह मोक्ष का मार्ग है परन्तु इतने में पूर्ण वीतरागता नहीं तो राग तो साथ में आता है। दया का, दान का, भक्ति का, विनय का, शास्त्र वाँचन का, सुनने का (राग तो आता है) तो दोनों एक साथ किस प्रकार रह सकते हैं ? ऐसी आशंका है। आहाहा! ११०। इसमें तो बहुत थोड़ा है। उसमें (कलश-टीका में) दो पृष्ठ भरे हैं, कलश-टीका में इस ११०, कलश में दो पृष्ठ भरे हैं। राजमलजी की टीका!

यावत्पाक-मुपैति कर्म-विरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा,
कर्मज्ञान-समुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः।
किन्त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बन्धाय तन्,
मोक्षाय स्थित-मेक-मेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः।।११०।।

आहाहा! **'यावत्' जब तक 'ज्ञानस्य कर्मविरतिः' ज्ञान की कर्मविरति..** ज्ञान

की कर्मविरति अर्थात् आत्मा की शुद्धपरिणति में जब तक राग की पूर्ण निवृत्ति जब तक नहीं, तब तक **ज्ञान की कर्मविरति भलीभाँति परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होती..** आत्मा का ज्ञान, दर्शन, चारित्र शुद्ध चैतन्य के अवलम्बन से हुए परन्तु राग की क्रिया का जब तक पूर्ण अभाव नहीं होता, तब तक राग की परिणति साथ में है। आहाहा! है ?

ज्ञान की कर्मविरति.. ज्ञान अर्थात् आत्मा की शुद्धपरिणति, वह जब तक राग की पूर्ण निवृत्ति न हो, राग से पूर्ण निवृत्ति न हो, (तब तक) **भलीभाँति परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होती तब तक.. 'कर्मज्ञानसमुच्चयः अपि विहितः न काचित् क्षतिः'** तो पुण्य के परिणाम भी साथ में हों और ज्ञान भी साथ में है। स्वरूप शुद्ध चैतन्य की दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वीतरागी पर्याय, परन्तु अपूर्ण वीतरागी पर्याय भी धर्मी को होती है और साथ में राग भी होता है। उसमें कुछ विरोध नहीं है। जितना राग आता है, उतना बन्ध का कारण है और जितना स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, (वह) अबन्ध का कारण है, मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया ?

इसलिए **उसके एकत्रित रहने में कोई भी क्षति या विरोध नहीं है।** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा, शुद्धस्वरूप पवित्र आनन्दकन्द के सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र ऐसी निर्मल परिणति उत्पन्न हुई, परन्तु पूर्ण निर्मल नहीं तो साथ में राग भी आता है तो उसमें कोई विरोध नहीं है। जितना राग है, उतना बन्ध का कारण है। शुद्ध आत्मा के स्वभाव के आश्रय से जितना मोक्षमार्ग उत्पन्न हुआ, वह मोक्ष का कारण है। दोनों भले हो, दो धारा (भले हो)।

अज्ञानी मिथ्यादृष्टि को एक धारा है, बन्ध की धारा है। वीतराग को एक अबन्ध का धारा है और साधक को दोनों (धाराएँ) हैं। मोक्षमार्ग की धारा भी है और राग की भी धारा है, दोनों साथ में हैं। आहाहा! क्या कहा ? कि मिथ्यादृष्टि राग से धर्म मानता है, पुण्य से धर्म मानता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को तो अकेली कर्मधारा, विकारधारा है, तो उसे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान कुछ है नहीं; और सर्वज्ञ वीतराग हुए, उन्हें कर्म, राग है नहीं; अकेली निर्मल धारा है। मिथ्यादृष्टि को अकेली मलिन धारा है, सर्वज्ञ को अकेली निर्मल धारा है और साधक जीव को चौथे गुणस्थान से निर्मल धारा भी है और मलिन (धारा) भी है। अपूर्णता है न! आहाहा! समझ में आया ?

जब तक राग, पुण्य के दया, दान के परिणाम मेरे हैं और मुझे लाभ होगा, ऐसी मिथ्यादृष्टि है, तब तक तो अकेली मिथ्यात्व की मलिन धारा है और सर्वज्ञ परमात्मा को अकेली निर्मल धारा है, उन्हें राग है नहीं परन्तु जब तक चौथे गुणस्थान में, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में साधक है, तब तक दोनों धाराएँ साथ में हैं। आत्मा के आश्रय से जो निर्मल पवित्र पर्याय हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय भी हो और साथ में जरा राग भी हो, पूर्ण वीतराग नहीं तो राग आता है, तो उसमें कुछ विरोध नहीं है। दोनों साथ में (रहे, उसमें) विरोध नहीं है। हाँ, सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन को साथ में रहने में विरोध है। सम्यग्दर्शन भी हो और मिथ्यादर्शन भी हो, यह (साथ में रहने में) विरोध है परन्तु आत्मा में शुद्धपरिणति है और अशुद्धपरिणति साथ में रहे, उसमें विरोध नहीं है। दोनों हो। आहाहा! समझ में आया? प्रभु का मार्ग, भाई! अलौकिक है, भाई!

अभी तो प्ररूपणा ऐसी चलती है, साधु भी ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि व्रत करो, तप करो, अपवास करो, ऐसा करो, वैसा करो... यह तो क्रियाकाण्ड है, राग है। सम्यग्दर्शन की बात पहले नहीं की, भाई! राग से भिन्न होकर, पुण्य-पाप की क्रिया से भिन्न होकर, अपना आत्मस्वभाव जो शुद्ध चैतन्यघन पड़ा है, उसका अवलम्बन लेने से जो सम्यग्ज्ञान, दर्शन होता है, वही मोक्ष का कारण है, वह धर्म है। धर्मी को बीच में राग आता है, वह धर्म नहीं है। आता है, होता है, वीतराग नहीं तब तक होता है। आहाहा! समझ में आया?

जब तक ज्ञान की कर्मविरति.. आत्मा में राग की पूर्ण विरति न हो। **भलीभाँति परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होती..** ज्ञान अर्थात् आनन्द की दशा, वीतरागी दशा परिपूर्ण न हो, **तब तक.. 'कर्मज्ञानसमुच्चयः अपि विहितः न काचित् क्षतिः'** पुण्य के परिणाम और ज्ञान की निर्मलदशा (का) **एकत्रितपना शास्त्र में कहा है;..** दोनों, भगवान ने शास्त्र में कहा है कि दोनों साथ में चलते हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में है, उसकी सम्यग्दर्शन की पर्याय जो वीतरागी है, वह निर्मल है परन्तु साथ में अभी तीन कषाय का राग है, तो राग भी हो और यह भी हो, उसमें कुछ विरोध नहीं है परन्तु जितना राग है, वह बन्ध का कारण है और मोक्ष का कारण (निर्मल परिणति है)। दोनों होने से, दो धारा के दो फल हैं। आहाहा! समझ में आया?

आहाहा! **कर्म और ज्ञान का एकत्रितपना शास्त्र में कहा है;..** देखा? **'विहितः'**

है न? ज्ञान **'कर्मज्ञानसमुच्चयः अपि विहितः'** शब्द में **'विहितः'** शब्द है। भगवान ने शास्त्र में कहा है कि जब आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, स्वभाव के आश्रय से शुद्ध आनन्द का स्वाद (आता है) परन्तु अपूर्ण है, उसे राग भी है, तो राग भी है और स्वभाव भी है, शुद्धपरिणति भी है, शास्त्र में कहा है, भगवान ने कहा है।

मुमुक्षु : सब ऐसा कहते हैं शास्त्र में है परन्तु मुझे अनुभव में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी पूर्ण नहीं है, तब तक राग है, ऐसा शास्त्र में भी कहते हैं।

मुमुक्षु : राग अनुभव में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग तो अनुभव में-वेदन में आता है। वेदन में तो दोनों आते हैं। (राग को) अपना नहीं मानता। वेदन आता है, राग का वेदन तो है। नय है, सैंतालीस नय हैं, उनमें लिया है। प्रवचनसार (में लिया है)। समकिती को भी राग का परिणमन है और राग का भोक्ता भी है परन्तु वह ज्ञान की दृष्टि से (कहा है)।

मुमुक्षु : अनुभव है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव भी है और राग का वेदन भी है, दोनों हैं। यदि एक होवे तो वीतराग हो जाए और एक राग ही होवे तो मिथ्यादृष्टि हो जाए।

मुमुक्षु : ज्ञानी को भी दोनों हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भी दोनों हैं। अभी पूर्ण नहीं न? उपशम है न! उपशम है। बारहवें गुणस्थान में भी अभी पूर्ण नहीं है। केवलज्ञान पूर्ण नहीं हुआ वहाँ। आहाहा! यहाँ तो निचले (गुणस्थान की) बात चलती है।

मुमुक्षु : यहाँ छठे गुणस्थान की बात चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान की बात चलती है)। चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में अपने स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन—ज्ञान चैतन्य की निर्मल परिणति है, साथ में राग भी है। शास्त्र कहते हैं और हम भी कहते हैं।

मुमुक्षु : ज्ञान में पकड़ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ में आता है, जानता है। राग (है, ऐसा) जानता है। आत्मा

का ज्ञान (हुआ) और साथ में राग आया तो उस समय जानता है कि राग है, परन्तु वह मेरी चीज़ नहीं है, दुःखदायक है, (ऐसा जानता है)। आहाहा! यह १२वीं गाथा में आया है। व्यवहार उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। संस्कृत में 'तदात्वे' (शब्द है) निश्चय अपने भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, त्रिकाल ज्ञायकभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। पर्यायदृष्टि से और राग से कभी भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। ऐसा हुआ तो भी जब तक पर्याय में पूर्ण वीतरागता नहीं है, तब तक, जब तक ऐसा है, तब तक राग भी होता है। होता है परन्तु राग है, वह बन्ध का कारण है और स्वभाव के आश्रय से जो निर्मल (पर्याय हुई), वह मोक्ष का कारण है। दोनों साथ रहते हैं। साथ में आते हैं तो वह राग मोक्ष का कारण है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

देखो! क्या कहा? **कर्म..** अर्थात् शुभभाव की क्रिया, परिणाम। **और ज्ञान..** अर्थात् आत्मा की शुद्धपरिणति। (दोनों का) **एकत्रितपना शास्त्र में कहा है;.. 'विहितः' उसके एकत्रित रहने में कोई भी क्षति या विरोध नहीं है।** साथ में होते हैं, इसमें विरोध नहीं है। दो हैं तो दोनों (अपना-अपना) काम करते हैं। शुद्धपरिणमन है, वह मोक्ष के कारण का-निर्जरा का काम करता है और अशुद्ध है, वह बन्ध का काम करता है। आहाहा!

उसमें बहुत लिखा है कि जो सम्यग्दर्शन है, वहाँ मिथ्यादर्शन साथ में हो, ऐसा नहीं होता परन्तु यहाँ शुद्धपरिणति अल्प है, उसके साथ राग की परिणति (भी है, उसमें) विरोध नहीं है। सम्यग्दर्शन के साथ मिथ्यादर्शन का विरोध है। मिथ्यादर्शन के साथ सम्यग्दर्शन का विरोध है परन्तु शुद्धपरिणति के साथ राग का विरोध नहीं। राग होता है तो ज्ञान में खटक हो गयी अथवा मोक्षमार्ग चला गया, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग!

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेह में (विराजते हैं, उनकी) यह सब वाणी है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे (उन्होंने यह शास्त्र) बनाया है। इसके कलश अमृतचन्द्राचार्यदेव ने बनाये जो एक हजार वर्ष बाद हुए। अभी से एक हजार वर्ष पहले और भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के एक हजार वर्ष बाद (हुए) अभी से एक हजार वर्ष पहले और कुन्दकुन्दाचार्यदेव के पश्चात् एक हजार वर्ष बाद। कुन्दकुन्दाचार्यदेव को दो हजार वर्ष हुए, अमृतचन्द्राचार्यदेव को एक हजार वर्ष (हुए)। आहाहा!

उसमें (कलश-टीका में) तो दो बड़े पृष्ठ भरे हैं। ११० (कलश) हैं न! दो पृष्ठ, हों! बड़े। आहाहा! देखो! यह ११०, ११० यहाँ से शुरु (होता है)। बड़ा लम्बा बहुत है। दो पृष्ठ भरे हैं। यह सब स्पष्टीकरण होता है। राजमलजी की टीका है। राजमल जैन धर्मी, जैनधर्म के मर्मी! यह सब पढ़ा गया है।

अभी (नहीं)। सामने पुस्तक न होवे न! व्याख्यान में सब पढ़ा गया है। यहाँ तो ४४ वर्ष हुए। ४० और ४! यह तो उन्नीसवीं बार समयसार चलता है। अठारह बार तो पूरा अक्षरशः अक्षर के अर्थ (सहित) चल गया है। यह (कलश-टीका) भी चल गयी, प्रवचनसार दोपहर में चलता है, वह भी छठी-सातवीं बार चलता है। वह चलता हो न तो साथ में हो तो उसका अर्थ निकले।

यहाँ इसका विस्तार यह है कि कर्म अर्थात् पुण्य-परिणाम—दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम और ज्ञान का एकत्रितपना (अर्थात्) आत्मा के स्वभाव का शुद्धपरिणमन (दोनों) एक साथ रहने में विरोध नहीं है। साधकपना है तो बाधकपना भी है, साधकपना भी है। आहाहा! राग को धर्म माननेवाले जीव को अकेला बाधकपना, मिथ्यादृष्टिपना है और वीतराग अकेले पूर्णानन्द को प्राप्त हो गये तो अकेली वीतराग धारा है और सम्यग्दर्शन चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में) है, वहाँ आगे शुद्ध धारा भी है और अशुद्ध धारा भी है। दोनों एक साथ रहने में विरोध नहीं। एक साथ रहने में विरोध नहीं। है तो राग नुकसानकारक परन्तु (साथ में) रहने में विरोध नहीं। आहाहा!

इसमें (कलश-टीका में) विस्तार किया है। इसका विस्तार तो ऐसा किया है, देखो! पहला शब्द है, ११० है। **कोई भ्रान्ति करेगा कि मिथ्यादृष्टि का यतिपना..** (अर्थात्) जो दिगम्बर साधु हों और राग से धर्म मानते हैं, पुण्य से धर्म मानते हैं, महाव्रत से मुझे धर्म होगा, वह मिथ्यादृष्टि है। उस मिथ्यादृष्टि का **यतिपना क्रियारूप है, वह बन्ध का कारण है, सम्यग्दृष्टि का है, जो यतिपना..** कोई ऐसा कहे कि सम्यग्दृष्टि का जो मुनिपना है, उसमें भी उसे पंच महाव्रत के परिणाम तो आते हैं, तो वह **शुभ क्रियारूप, सो मोक्ष का कारण है..** ऐसा कोई कहता है। **क्योंकि अनुभवज्ञान तथा दया, व्रत, तप, संयमरूप क्रिया दोनों मिलकर ज्ञानावरणादि कर्म का क्षय करते हैं। ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते हैं।** इसका तो यहाँ स्पष्टीकरण है।

वहाँ समाधान ऐसा है कि जितनी शुभ-अशुभ क्रिया, बहिर्जल्परूप विकल्प अथवा अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्यों के विचाररूप अथवा शुद्धस्वरूप का विचार इत्यादि समस्त कर्मबन्ध का कारण है। इतना (स्पष्टीकरण) दिया। बनारसीदास ने लिखा है 'राजमल्ल जैनधर्मी, जैनधर्म के मर्मी।' बनारसीदास (ने) समयसार नाटक बनाया है न! इसमें से बनाया है। उन्होंने समयसार नाटक लिखा है। पहले से सब देखा है न! (संवत्) १९७८ में समयसार मिला है। कितने वर्ष हुए? १९७८ के वर्ष में पहले समयसार मिला। २२ और ३५ = ५७ वर्ष पहले। ५० और ७। बनारसीदास ने भी समयसार नाटक में ऐसा कहा 'राजमल्ल जैनधर्मी, जैनधर्म का मर्मी है।' उन्होंने यह टीका बनायी है। आहाहा! वह बाद में मिला था।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को महाव्रत का भाव आता है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, जब मुनि स्वसंवेदन में होते हैं, आत्मा के आनन्द का उत्कृष्ट वेदन (होता है), उस दशा में महाव्रत के परिणाम आते हैं, परन्तु है बन्ध का कारण। यह तो कहते हैं कि आत्मद्रव्य के अवलम्बन से जितना सम्यग्दर्शन - ज्ञान-चारित्र हुआ, वह मोक्ष का कारण है और बीच में पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण, पाँच समिति, तीन गुप्ति का व्यवहार आता है, वह बन्ध का कारण है। यदि न आवे तो वीतराग हो जाए और बिल्कुल ज्ञानपरिणति न हो, शुद्धस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान न हो तो मिथ्यादृष्टि है, मिथ्यात्व है। उसे एक धारा है। यह तो दो धाराएँ हैं। शुद्धपरिणति भी है और अशुद्धपरिणति भी है। आहाहा!

(यहाँ कहते हैं) **उसके एकत्रित रहने में कोई भी क्षति या विरोध नहीं है।** इसमें ऐसा लिखा है कि सम्यग्दर्शन (और) मिथ्यादर्शन (के साथ में) रहने में विरोध है परन्तु वीतरागी परिणति अल्प है, उसमें राग आना, वह कोई विरोध नहीं है। राग आता है परन्तु है बन्ध का कारण। बन्ध का कारण और मोक्ष का कारण एक साथ रहने में विरोध नहीं है।

मुमुक्षु : साधक को बाधक (भाव) होवे ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे ही; साधक किसे कहते हैं? साधक है, वहाँ तक थोड़ा बाधकभाव तो आता ही है। पूर्ण साध्य सिद्ध केवली हो गये, (उन्हें राग नहीं है)। या अकेले राग को धर्म माननेवाले मिथ्यादृष्टि को अकेली अज्ञानधारा है। उसे सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा!

किन्तु यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि आत्मा में.. 'अवशतः यत् कर्म समुल्लसति' अवशपने.. जो राग आता है; कर्म अर्थात् राग। राग करने का भाव नहीं है परन्तु राग आये बिना रहता नहीं। पुरुषार्थ की कमजोरी है न! चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में रौद्रध्यान भी है। पाँचवें गुणस्थान तक रौद्रध्यान है। छठवें गुणस्थान में आर्तध्यान है। मलिन (भाव) आते हैं परन्तु निर्मल भी साथ में है और मलिन भी साथ में है। मलिन है, वह बन्ध का कारण है और निर्मल है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! अकेले पंच महाव्रत पालता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। पंच महाव्रत के परिणाम आस्रव हैं, उन्हें धर्म मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि की धारा एक ही है, परन्तु अपने में शुद्ध चैतन्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ और पंच महाव्रत के परिणाम बन्ध का कारण है, ऐसी दृष्टि हुई, आगे (जाने पर) उसकी स्वसंवेदन की दशा उग्र हो गयी तो पंच महाव्रत के परिणाम आते हैं, तो धारा निर्मल ही है और मलिन भी है। मलिन धारा बन्ध का कारण है, निर्मल धारा मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म पड़े। आहाहा! यह तो ले लो प्रतिमा! परन्तु अभी सम्यग्दर्शन बिना प्रतिमा-फ्रतिमा आयी कहाँ से? दो प्रतिमा, चार प्रतिमा, सात प्रतिमा, ग्यारह प्रतिमा...

मुमुक्षु : सात प्रतिमा तक तो कोई उसका भाव नहीं पूछता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ (प्रतिमा) है। यह है न, एक व्यक्ति यहाँ आया था (उसने कहा) मेरे पास सात प्रतिमा है तो भी अभी हमें कोई पूछता नहीं, इसलिए ग्यारह प्रतिमा ले लूँगा, फिर लोग पूछे तो सही! अरे रे! वह राजकोट आया था, राजकोट। पंच कल्याणक में (आया था)। वह तो अकेला क्रियाकाण्ड। आत्मा कौन है? राग से भिन्न है, उस राग की क्रिया का कर्ता मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। राग आता अवश्य है परन्तु ज्ञानी उसे कर्तारूप से-करनेयोग्य है—ऐसा नहीं मानते और राग में अपनेपने की बुद्धि नहीं है और परबुद्धिरूप से उसे जानते हैं कि जाननेयोग्य चीज़ है परन्तु है बन्ध का कारण। धर्मी को भी राग आया, वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

छठवें गुणस्थान में सच्चे सन्त हों, उन्हें पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं परन्तु है राग। उसे छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो, तब सातवें (गुणस्थान में) अप्रमत्तदशा आती है

और छठवाँ (गुणस्थान) भी पहले सम्यग्दर्शन हुआ हो, उसे मुनिपना आता है। सम्यग्दर्शन का अभी ठिकाना न हो, (वहाँ मुनिपना कहाँ से होगा?) मैं शरीर की क्रिया कर सकता हूँ, पर की दया पाल सकता हूँ, (ऐसा माननेवाले) तो सब मिथ्यादृष्टि हैं। अपनी पर्याय में विकार होता है तो वह विकार कर्म से होता है, (ऐसा माननेवाला) मिथ्यादृष्टि है। कर्म तो जड़ है। 'कर्म विचारै कौन भूल मेरी अधिकाई।' मेरी भूल अधिक है। कर्म तो जड़ है। 'अग्नि सहै घनघात लोह की संगति पाई।' भजन में आता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **अवशपने..** अवश अर्थात् बलजोरी नहीं, ज्ञानी को करने का भाव नहीं, परन्तु अवशपने पुरुषार्थ की कमी से राग आता है। **वह तो बन्ध का कारण है,..** सम्यग्दृष्टि को और मुनि को भी जो पंच महाव्रत का विकल्प आता है, सम्यग्दृष्टि को जो दया, दान, भक्ति के परिणाम आते हैं, वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : अवशपने अर्थात् कर्म के उदय के कारण से?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् स्वयं को करने का भाव नहीं है, परन्तु पुरुषार्थ की कमजोरी से आवे, वह अवश, परवश हो गया। निमित्त के आधीन हो गया। निमित्त ने कराया नहीं। निमित्त के आधीन हो गया। पुरुषार्थ की कमी, वह अवश, परवश से (हुआ है)। परवश भी स्वयं अपने से हुआ है, परवश दूसरा कराता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! **वह तो बन्ध का कारण है,..** है? परवशपने अर्थात् स्वयं को करने का भाव नहीं है, उसमें सुखबुद्धि नहीं है, हितबुद्धि नहीं है (और) राग आता है तो अवश कहने में आया। वह बन्ध का कारण है।

'एकम् एव परमं ज्ञानं स्थितम्' एक परम ज्ञानस्वरूप निर्मल परिणति, वह एक ही मोक्ष का कारण है। आहाहा! शुभ चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु, राग के विकल्प से निर्विकल्प भिन्न चीज़ है, उस निर्विकल्प स्वभाव के आश्रय से जो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ, वह तो मोक्ष का कारण है। वह बन्ध का अंश भी कारण नहीं है। उसमें इससे भी स्पष्ट लिया है कि राग है, वह अंश भी मोक्ष का कारण नहीं है। बिल्कुल बन्ध का कारण है और मोक्ष का कारण है, वह अंश भी बन्ध का कारण नहीं है। उसके स्पष्टीकरण में यह लिया है। समझ में आया?

(अर्थात् तीनों काल परद्रव्य-भावों से भिन्न है।) आहाहा! मोक्ष की पर्याय जो कारण है, वह राग से तो तीनों काल भिन्न है। राग के साथ भले हो परन्तु वस्तु भिन्न है। राग से भिन्न है, वह मोक्ष का कारण है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)